ORIGINAL RESEARCH PAPER

Literature

जयोदय महाकाव्य मे आर्थिक विचार

KEY WORDS: .

Dr. B.L. Sethi Professor Dr. B.L. Sethi, M. Phil., Ph. D., D.Litt., Director, Trilok Institute of Higher Studies and Research Hotel Om Tower, Church Road M.I. Road, Jaipur-302001.

Dr. Naredera Kumar Sharma Lecturer Seth Moti Lal PG Collage, JHUNJHUNU, Trilok Institute of Higher Studies and Research Hotel Om Tower, Church Road M.I. Road, Jaipur-302001.

जयोदय महाकाव्य में आचार्य ज्ञानसागर ने जीवन का लक्ष्य त्रिगौरव को प्राप्त करना बतलाया है। इस त्रिगौरव में रसगौरव, शब्दगौरव और ऋद्धिगौरव सम्मिलित है। आर्थिक दृष्टि से ऋद्धि गौरव के अन्तर्गत वस्तुओ की विशेषताएँ, उसकी आन्तरिक दशाएँ, अर्जन एवं संवर्द्धन सम्मिलित है। जयोदय महाकाव्य में उपयोगिता को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। आवश्यकता की पूर्ति तभी तुष्टि का कारण बन सकती है, जब उसकी उपयोगिता किसी दृष्टि से हो। आवश्यकताओं की उत्पत्ति के कारणों में भौगोलिक, शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, स्वाभाविक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक आदि प्रमुख है। मनुष्य की प्रधान आवश्यकताओं में क्षुधा, तृषा, विश्राम, शीतातप से संरक्षण, वस्त्र, आवास एवं आत्मरक्षा सम्बन्धी है। मनुष्य इन आवश्यकताओं की पूर्ति अपने विवेक द्वारा सम्पन्न करता है। जयोदय महाकाव्य में विवेक को विशेष महत्व दिया है।[1]

उपयोगितावाद को स्पष्ट करते हुए बताया है – ''रत्नानिननु तान्येव यानि यान्त्युपयोगिताम्''। दर्शन के सिद्धान्तानुसार मनुष्य न तो नयी वस्तु का निर्माण करता है और न किसी पुरानी वस्तु का विनाश करता है, केवल उपयोगिता का सृजन करता है। उपयोगिता के सृजन का ही नाम उत्पादन या उपभोग है। वस्तुओं की जैसी–जैसी उपयोगिता बढ़ती जाती है, उनका मूल्य भी वृद्धिगत होता जाता है। मूल्य निर्धारण उपयोगिता के आधार पर ही किया जाता है। जहॉ वस्तुओं की अधिकता रहती है, वहॉ उपयोगिता भी घटती जाती है। जिनसेनाचार्य ने रत्नों का उदाहरण देकर उपयोगितावाद का बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण किया है। रत्न तभी रत्नसंज्ञा को प्राप्त होते है, जब खान से निकालने के बाद उन्हें सुसंस्कृत कर उपयोगी बना दिया जाता है। यदि रत्नों में संस्कार न किया जाय–उपयोगिता का सृजन न किया जाय, तो रत्न रत्न न होकर पाषाण कहलायेंगे अतः आर्थिक क्रियाओ का प्रारम्भ उपभोग या उपयोगिता से होता है और उसकी समाप्ति भी उन्हीं दोनों से होती है। मूलतः आर्थिक क्रियाओं का जन्म मनुष्य की आवश्यकताओं से होता है, जिनकी पूर्ति अत्यन्त आवश्यक है। आवश्यकताएँ शारीरिक और मानसिक वेदना उत्पन्न करती है, जिससे बेचैनी होती है और बेचैनी के कारण मनुष्य का जीवन विश्रृंखलित हो जाता है। इसी कारण जयोदय महाकाव्य में उपयोगिता को महत्त्व दिया है। यह उपयोगिता, उपभोग या उत्पादन की समानार्थक है। जब उपयोगिता पूर्ण हो जाती है, तो परम सन्तोष प्राप्त होता है। मनुष्य के दुःख का कारण भौतिकता के प्रति मानसिक वृत्ति का अत्यधिक राग अथवा द्वेषयुक्त हो जाना है। ये राग और द्वेष जब सन्तुलन की स्थिति को प्राप्त होते है, तभी व्यक्ति को परम सन्तोष उपलब्ध होता है और परम शान्ति मिलती है।

जयोदय महाकाव्य में धनार्जन के साथ विवेक को महत्त्व देते हुए लिखा है– लक्ष्मी वाग्वनिता समागम सुख स्यैकाधिपत्यं दधत् अर्थात् सरस्वती और लक्ष्मी का समान रूप से सन्तुलन ही सुख का कारण है। जो व्यक्ति धनार्जन, धनरक्षण और धनसंवर्द्धन करते समय विवेक को खो देता है, वह व्यक्ति संसार में सुखी नहीं हो सकता। इसी सिद्धान्त को विस्तृत करते हुए जयोदय महाकाव्य में बताया है – न्यायोपार्जित वित्त काम घटना अर्थात् न्यायपूर्वक चयन किये हुए धन से ही इच्छाओं की पूर्ति करनी चाहिए । इच्छाएँ अनन्त है और पूर्ति के साधन अत्यल्प। अतएंव समस्त इच्छाओं की पूर्ति तो असम्भव है। ऐसी स्थिति में अधिक तीव्र आवश्कताओं की पूर्ति ही न्यायोचित प्राप्त धन से करनी चाहिये। अर्थशास्त्र का नियम है कि सीमित साधनो को विभिन्न आवश्यकताओ पर इस प्रकार व्यय करना चाहिये, जिससे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो सके। आवश्यकताओं की तीव्रता ही उनकी प्राथमिकता की निर्णायक है। सामान्यतः आवश्यकताओं को पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता है–[2]

1. जीवन रक्षक आवश्यकताएँ ।
2. निपुणता रक्षक आवश्यकताएँ ।
3. प्रतिष्ठा रक्षक आवश्यकताएँ ।
4. आराम सम्बन्धी आवश्यकताएँ ।
5. विलासिता सम्बन्धी आवश्यकताएँ ।

इस वर्गीकरण की प्रथम तीन आवश्यकताएँ अनिवार्य है। जिनकी पूर्ति जीवन रक्षा, कार्यदक्षता एवं सामाजिक तथा धार्मिक परम्पराओं की दृष्टि से अनिवार्य है। इनकी सन्तुष्टि के बिना हमें शारीरिक एवं मानसिक कष्ट का अनुभव होता है और हमारी कार्यक्षमता घटती है।

आराम सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति से मनुष्य को सुख एवं आराम उपलब्ध होता है। इनकी पूर्ति न होने से मनुष्य को कष्ट होता है। जीवन स्तर गिरता है एवं कार्यक्षमता का ह्रास होता है। जो आराम सम्बन्धी आवश्यकताएँ विलास और वासना को प्रोत्साहित करती है, वे आवश्यकताएँ महत्त्वहीन है। विलासिता के अन्तर्गत हानिकारक विलासिताएं, हानिरहित विलासिताएँ और कल्याणकारी विलासिताएँ परिगणित है। जिन विलासिताओं के सेवन से मनुष्य व्यसनी बनता है वे विलासिताएँ हानिकारक है। कल्याणकारी विलासिताओं में संस्कृति और सभ्यता के विकास की प्रगति निहित रहती है। ललित कलाओं और शिल्प कौशल को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रस्तुत करना कल्याणकारी विलासिताओं के अन्तर्गत है। हानिरहित विलासिताओं में भव्य भवन, विभिन्न प्रकार के आभूषण एवं यान वाहन आदि सम्मिलित है। शृंगार प्रसाधन एवं उपभोग के अन्य कार्य भी इसी प्रकार की आवश्यकताओं के अंग है। अतः जयोदय महाकाव्य के सिद्धान्तानुसार वस्तु में उपयोगिता का सृजन करना ही वस्तुओं का उत्पादन है।

आर्थिक सिद्धान्तों के अनुसार धर्म आर्थिक प्रगति में बाधक माना गया है। सन्तोषी व्यक्ति आर्थिक समृद्धि को किस प्रकार प्राप्त कर सकेगा, यह चिन्त्य है। अध्यात्मप्रेमी, उत्पादन कार्यो से जब विमुख रहेगा, तो किस प्रकार अर्थ की समृद्धि कर सकेगा। उक्त समस्या का समाधान जयोदय महाकाव्य के अध्ययन से प्राप्त हो जाता है। जिनसेनाचार्य ने एकान्तः धर्म और अर्थ के सेवन का विरोध किया है। जो अर्थ के साथ धर्म का समन्वय करता है, ऐसा व्यक्ति आर्थिक समृद्धि के साथ आध्यात्मिक समृद्धि को भी प्राप्त कर लेता है। धर्मबुद्धि पूर्वक इष्टार्थ की पूर्ति कामनाओं की पूर्ति करनी चाहिए। कामनाओं की पूर्ति का साधन अर्थ है और अर्थार्जन के लिए श्रम एंव पूँजी का विनिमय करना आवश्यक है।''[3]

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री –'' आदिपुराण में प्रतिपादित भारत'' पृष्ठ – 327
2. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री –'' आदिपुराण में प्रतिपादित भारत'' पृष्ठ – 327
3. डा. नेमिचन्द्र शास्त्री –'' आदिपुराण में प्रतिपादित भारत'' पृष्ठ – 328
4. जयोदय महाकाव्य 46/55
5. जयोदय महाकाव्य 2/23–31,